स्तूपों का भारतीय संस्कृति एवं विरासत में योगदान

Dr. Richa Pathak

ABSTRACT

बौद्ध धर्म में स्तूप एक गुंबददार अर्धगोलाकार संरचना है जिसमें कई प्रकार के पवित्र अवशेष होते हैं। इसका उपयोग तीर्थयात्रा और ध्यान के स्थान के रूप में किया जाता है।

KEYWORDS-अशोक, बौद्ध धर्म, भारतीय वास्तुकला, सांची, स्तूप

Dr. Richa Pathak
Assistant Professor, Department of Ancient History Archaeology and Culture
K.S. Saket P.G. College, Ayodhya

सार

बौद्ध धर्म में , स्तूप (संस्कृत : स्तूप , शाब्दिक अर्थ ' ढेर ' , आईएएसटी : स्तूप ; पाली : थूपा) एक गुंबददार अर्धगोलाकार संरचना है जिसमें कई प्रकार के पवित्र अवशेष होते हैं, जिनमें मूर्तियाँ, प्रतिमाएँ, धातुएँ और शरीर - बौद्ध भिक्षुओं या भिक्षुणियों के अवशेष शामिल हैं। इसका उपयोग तीर्थयात्रा और ध्यान के स्थान के रूप में किया जाता है । [1]

स्तूप की परिक्रमा दक्षिणावर्त दिशा में करना, जिसे प्रदक्षिणा कहा जाता है , बौद्ध धर्म में प्राचीन काल से ही एक महत्वपूर्ण अनुष्ठान और भक्तिमय प्रथा रही है, और स्तूपों के चारों ओर हमेशा एक प्रदक्षिणा पथ होता है। मूल दक्षिण एशियाई स्वरूप में एक विशाल ठोस गुंबद होता है जिसके ऊपर ऊर्ध्वाधर भुजाओं वाला एक ढोल या ड्रम होता है, जो आमतौर पर एक वर्गाकार आधार पर टिका होता है। संरचना के अंदर जाने का कोई रास्ता नही होता। बड़े स्तूपों में, आधार के ऊपर और नीचे जमीन पर परिक्रमा के लिए रास्ते हो सकते हैं। बड़े स्तूपों में आधार के चारों ओर के पथ के बाहर वेदिका रेलिंग होती हैं, जो अक्सर मूर्तियों से अत्यधिक अलंकृत होती हैं, विशेष रूप से तोरण द्वारों पर, जिनकी संख्या आमतौर पर चार होती है। गुंबद के शीर्ष पर एक पतला, ऊर्ध्वाधर तत्व होता है, जिससे एक या एक से अधिक क्षैतिज डिस्क फैली होती हैं। ये छत्र थे , प्रतीकात्मक छतरियां, और यदि इनका जीर्णोद्धार नही किया गया है तो ये अब मौजूद नही हैं। मध्य प्रदेश के सांची में स्थित महान स्तूप भारत का सबसे प्रसिद्ध और सबसे अच्छी तरह से संरक्षित प्रारंभिक स्तूप है।

परिचय

स्तूपों ने भारत की वास्तुकला, मूर्तिकला, आध्यात्मिक परंपराओं और वैश्विक सांस्कृतिक कूटनीति को आकार देकर भारतीय संस्कृति एवं विरासत में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्राचीन काल में मिट्टी के टीले के रूप में शुरू हुए ये स्मारक बौद्ध धर्म के उदय, विशेषकर सम्राट अशोक के काल में, भारतीय कला और दर्शन के प्रमुख केंद्र बन गए।

1. वास्तुकला और स्थापत्य कला का विकास

- प्रतीकात्मक संरचना. स्तूप की वास्तुकला गहरे दार्शनिक अर्थ समेटे हुए है। इसका अर्धगोलाकार गुंबद ('अंड') ब्रह्मांड का प्रतीक है, शीर्ष पर स्थित 'हर्मिका' देवताओं के निवास को दर्शाती है, और 'यष्टि' व 'छत्र' पृथ्वी को स्वर्ग से जोड़ने वाली धुरी तथा त्रिरत्न (बुद्ध, धम्म, संघ) का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- निर्माण शैली में क्रांति. प्रारंभ में मिट्टी और ईंटों से बनने वाले स्तूपों में मौर्योत्तर काल (शुंग और सातवाहन वंश) के दौरान पत्थरों का व्यापक उपयोग शुरू हुआ। इसने भारत में टिकाऊ पाषाण वास्तुकला (Stone Architecture) की नींव रखी, जिसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण सांची का महास्तूप है।

2. मूर्तिकला और कथात्मक कला का उत्कर्ष

- जातक कथाओं का चित्रण. भरहुत, सांची और अमरावती के स्तूपों की वेदिकाओं (रेलिंग) और तोरण द्वारों पर की गई नक्काशी ने भारतीय मूर्तिकला को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। इन पर भगवान बुद्ध के जीवन की घटनाओं और जातक कथाओं को अत्यंत सजीव रूप में उकेरा गया है।
- प्रतीकात्मक कला. प्रारंभिक हीनयान परंपरा में बुद्ध को मानव रूप में न दिखाकर उनके प्रतीकों--जैसे बोधिवृक्ष, धर्मचक्र, रिक्त आसन और पदचिह्नों--के माध्यम से दर्शाया गया, जिसने भारतीय प्रतीकात्मक कला को समृद्ध किया।

3. आध्यात्मिक और सामाजिक केंद्र

- सामूहिक भागीदारी. स्तूपों का निर्माण केवल राजाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि आम जनता, व्यापारियों और शिल्पकारों के सामूहिक दान से भी होता था। इन पर खुदे अभिलेख उस समय की सामाजिक समरसता और दानशीलता का प्रमाण देते हैं।
- ध्यान और तीर्थयात्रा. स्तूपों के चारों ओर बना 'प्रदक्षिणा पथ' परिक्रमा और ध्यान की परंपरा का केंद्र बना। इसके साथ ही, सारनाथ, कुशीनगर, बोधगया और सांची जैसे स्थल प्रमुख तीर्थ और ज्ञान केंद्रों के रूप में विकसित हुए।

4. वैश्विक सांस्कृतिक प्रसार (सॉफ्ट पावर)

- एशिया में भारतीय कला का प्रभाव. सम्राट अशोक और बाद के शासकों के प्रयासों से स्तूप निर्माण की यह परंपरा भारत की सीमाओं से निकलकर श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड, इंडोनेशिया (बोरोबुदुर) और पूर्वी एशिया तक पहुंची। वहां की स्थानीय स्थापत्य शैलियों (जैसे पगोडा) की जड़ें भारतीय स्तूपों में ही निहित हैं। विश्व धरोहर के रूप में पहचान. आज सांची, सारनाथ और नालंदा जैसे स्तूप स्थल यूनेस्को विश्व धरोहर (UNESCO World Heritage) के रूप में भारत की समृद्ध ऐतिहासिक विरासत का प्रतिनिधित्व करते हैं और वैश्विक पर्यटन व सांस्कृतिक संवाद को बढ़ावा देते हैं।

प्रमुख ऐतिहासिक स्तूप और उनका महत्व

प्रमुख स्तूप	स्थान	सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक योगदान
सांची का महास्तूप	मध्य प्रदेश	भारत की सबसे प्राचीन संरक्षित पत्थर की संरचनाओं में से एक; इसके चार तोरण द्वार मूर्तिकला के उत्कृष्ट नमूने हैं।
धमेख और चौखंडी स्तूप	सारनाथ (उत्तर प्रदेश)	भगवान बुद्ध के प्रथम उपदेश (धर्मचक्र प्रवर्तन) की स्मृति में निर्मित; ज्यामितीय और पुष्प नक्काशी के लिए प्रसिद्ध।
अमरावती स्तूप	आंध्र प्रदेश	सातवाहन काल में सफेद संगमरमर (चूना पत्थर) के उपयोग और अत्यंत बारीक कथात्मक मूर्तिकला के लिए विख्यात।
भरहुत स्तूप	मध्य प्रदेश	शुंग कालीन कला का प्रमुख केंद्र, जहाँ पहली बार बड़े पैमाने पर जातक कथाओं का पाषाण पर अंकन हुआ।

विचार-विमर्श

सांची स्तूप भारत के प्रमुख बौद्ध स्थलों में से एक है और इसमें देश की कुछ सबसे प्राचीन पत्थर की संरचनाएं मौजूद हैं। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एएसआई) द्वारा महानिदेशक जॉन मार्शल की देखरेख में 1912 से 1919 के बीच सात वर्षों तक समर्पित उत्खनन और जीर्णोद्धार कार्य करने के बाद ही दुनिया को इसकी वास्तविक भव्यता और महत्व का एहसास हो पाया। यह इस तथ्य के बावजूद संभव हुआ कि सांची ने लगभग 1500 वर्षों में बौद्ध शिक्षा और विचार की स्थापना, उत्कर्ष और उसके बाद पतन को देखा। दिलचस्प बात यह है कि बुद्ध ने कभी सांची का दौरा नहीं किया। न ही ज़ुआनज़ैंग (ह्वेन त्सांग) जैसे विदेशी यात्रियों ने, जिन्होंने भारत में पवित्र बौद्ध यात्रा का विस्तृत दस्तावेजीकरण किया और अपने लेखन में सांची का कोई उल्लेख नहीं किया।

इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि मार्शल ने अपनी पुस्तक 'द मॉन्यूमेंट्स ऑफ सांची ' (1938) में लिखा है कि सांची को भारत के अन्य बौद्ध तीर्थ स्थलों जितना सम्मान नहीं दिया जाता था। फिर भी, ये अद्भुत स्मारक, अपनी शानदार नक्काशी और शिलालेखों के साथ, मौर्य काल (तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व) से लेकर बाद के मध्ययुगीन काल (लगभग 11वीं शताब्दी ईस्वी) तक की भारतीय वास्तुकला को प्रतिबिंबित करते हैं। सांची परिसर महास्तूप, अशोक स्तंभ (जिस पर शिलालेख अंकित हैं) और अपने विशिष्ट अलंकृत तोरणों (द्वारों) के लिए प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि तोरणों और बाड़ की शैली आसपास के क्षेत्रों की बांस शिल्पकला की नकल करती है। सहपीडिया के सलाहकार और दिल्ली के शिल्प संग्रहालय के पूर्व उप निदेशक मुश्ताक खान कहते हैं, 'यदि कोई स्तूप के चारों ओर की बाड़ की डिजाइन और तोरणों की डिजाइन (दो पार्श्व पैनलों और ऊपर तीन प्रतिच्छेदी क्षैतिज पैनलों के साथ) को देखे, तो वे बांस शिल्प और बंधे हुए बांस की याद दिलाते हैं।' भारत में पुरातत्वविदों ने पाया है कि कई प्रारंभिक बौद्ध स्तूप या समाधि स्थल बहुत पुराने, प्रागैतिहासिक समाधि स्थलों के आसपास पाए जाते हैं, जिनमें महापाषाण समाधि स्थल भी शामिल हैं। [12] इसमें सिंधु घाटी सभ्यता से जुड़े स्थल भी शामिल हैं , जहाँ टूटे हुए सिंधु-युग के मिट्टी के बर्तनों को बाद के बौद्ध समाधि स्थलों में शामिल किया गया था। [12] विद्वानों ने स्तूप की संरचनात्मक और कार्यात्मक विशेषताओं (जिसमें इसका सामान्य टीले जैसा आकार और स्तूपों को पत्थर, अवशेष कक्ष या लकड़ी की रेलिंग से घेरने की प्रथा शामिल है) को भारत में पाए गए मौर्य-पूर्व काल के टीलों और प्रागैतिहासिक महापाषाण

"गोल टीले" समाधि स्थलों के साथ देखा है, जो संभवतः एक "आदि-स्तूप" का प्रतिनिधित्व करते हैं। [11] [12]

धोलावीरा , जो सिंधु घाटी सभ्यता से जुड़ा एक पुरातात्विक स्थल है, में ईंटों से निर्मित कई विशाल और ऊंचे अर्धगोलाकार टीले हैं जिनके भीतर दफन कक्ष पाए गए हैं। इनमें से, टीला-1 और टीला-2 की खुदाई की गई है। इनमें एक गहरा और चौड़ा चट्टान काटकर बनाया गया कक्ष है, जो जमीन पर दो स्तरों में बनी एक विशाल गोलाकार मिट्टी की ईंटों की संरचना से घिरा हुआ है, जिसे मिट्टी से भरकर गुंबदनुमा आकार दिया गया है। [13] टीला-1 के बाहरी हिस्से पर प्लास्टर के भी प्रमाण मिले हैं, जिसमें ईंटों की चिनाई के ऊपर गुलाबी-सफेद मिट्टी का 10 मिमी मोटा प्लास्टर लगा हुआ है। [13] समान लेआउट वाले ईंटों की चिनाई से बने अर्धगोलाकार स्मारकों या टीलों के ये रूप बाद के स्तूपों के लिए प्रेरणा रहे होंगे। [13] कुछ स्तूप, जिनके बारे में माना जाता है कि उन्हें लूटा नही गया था, खुदाई के दौरान खाली पाए गए हैं, जैसा कि कुछ प्रागैतिहासिक टीले स्थल भी पाए गए हैं, और दोनों प्रकार के स्थलों पर कभी-कभी जानवरों की हड्डियाँ जमा होने का संदेह है। [12]

पश्चिम में ऐतिहासिक स्मारक अतीत को संरक्षित करते हैं और प्रेरणा का स्रोत हैं। पूर्व में भी यही बात लागू होती है, सिवाय इसके कि कुछ स्मारकों के बारे में यह भी माना जाता है कि उनमें मृतकों की अस्थियां और शक्तियां समाहित हैं। सिद्धार्थ नामक व्यक्ति के स्मारक इसका एक उदाहरण हैं।

सिद्धार्थ गौतम एक धनी शासक के पुत्र थे, फिर भी उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के लिए एक सरल ध्यानमय जीवन व्यतीत करने हेतु अपनी सारी संपत्ति त्याग दी। वे बुद्ध बने और ज्ञान प्राप्ति के विषय में उनके उपदेश बौद्ध धर्म का आधार हैं। उनके वचन उनकी मृत्यु के बाद भी जीवित हैं और बौद्ध मानते हैं कि उनके पार्थिव अवशेष आज भी मानव जाति की रक्षा करने की शक्ति रखते हैं, उनकी जीवंत उपस्थिति का संचार करते हैं और उनकी ऊर्जा को समाहित करते हैं।

यद्यपि बुद्ध के पृथ्वी पर जीवन और वर्तमान समय के बीच हजारों वर्ष का अंतर है, फिर भी आज बौद्ध धर्म के अनुयायी उनकी चिरस्थायी ऊर्जा का अनुभव करने और उससे प्रभावित होने के लिए स्तूप नामक विशेष स्मारकों की यात्रा करते हैं।

स्तूप क्या होता है?

स्तूप (स्टूप-आह) प्राचीन भारत में आम लोगों के लिए पारंपरिक समाधि स्थल हुआ करते थे। इनका कोई धार्मिक महत्व नही था; ये मात्र स्मारक थे जो आज के स्तूपों की तुलना में कम भव्य और कम ध्यान आकर्षित करने वाले थे। बुद्ध की मृत्यु ने इस स्थिति को पूरी तरह बदल दिया।

प्राचीन बौद्ध ग्रंथ महापरिनिर्वाण सूत्र में बुद्ध के पृथ्वी पर अंतिम दिनों का विस्तृत वर्णन है। इसमें कहा गया है कि बुद्ध के अनुयायियों ने उनके अवशेषों को आठ भागों में विभाजित किया और उन्हें उन आठ राज्यों में वितरित किया जिनमें बुद्ध अपने जीवनकाल में रहे थे। भारत में प्रचलित पारंपरिक अंत्येष्टि प्रथाओं के अनुसार, उनके भक्तों ने उनके अवशेषों को रखने के लिए समाधि-टीले बनवाए, जो स्थापत्य कला के साथ विकसित होकर स्तूपों में तब्दील हो गए।

"यीशु की शक्ति उनकी मृत्यु के बाद भी लंबे समय तक बनी रहती है, लेकिन उनकी उपस्थिति किसी स्थान या अवशेष से बंधी नही है। हमें उनका सम्मान करने के लिए कोई इमारत बनाने की आवश्यकता नही है। मसीह की शक्ति पवित्र आत्मा के माध्यम से हमारे भीतर निवास करती है। "

आज स्तूप अर्धगोलाकार स्मारक हैं जिनमें बुद्ध या बौद्ध भिक्षुओं या भिक्षुणियों के दाह संस्कार के बाद बचे अवशेष या

वस्तुएं रखी जाती हैं। आमतौर पर पांच प्रकार के स्तूप होते हैं, जिनमें से प्रत्येक का एक उद्देश्य होता है - अवशेषों को रखना या बुद्ध के जीवन और शिक्षाओं का स्मरण करना।

ऐसा माना जाता है कि मूल आठ स्तूपों का निर्माण बुद्ध की मृत्यु के बाद 483 या 400 ईसा पूर्व में उत्तरी भारत में हुआ था। कुछ स्रोतों का दावा है कि भारत के मौर्य साम्राज्य के सम्राट अशोक ने बाद में सीलबंद स्तूपों को खुलवाया और बुद्ध के अवशेषों को चौरासी हजार भागों में विभाजित किया ताकि विश्व भर में और अधिक स्तूपों का निर्माण किया जा सके।

परिणाम

अनेक बौद्ध धर्मावलंबी ध्यान लगाने, स्तूपों में रखे अवशेषों का सम्मान करने और पुण्य कमाने तथा अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए स्तूपों की तीर्थयात्रा करते हैं। लोग अक्सर दुर्भाग्य और बुरी आत्माओं से बचाव के लिए अवशेषों की सुरक्षात्मक शक्ति की कामना करते हैं। स्तूप स्वयं भी पूजनीय है क्योंकि इसमें अवशेष रखे होते हैं। कुछ स्तूपों में बार-बार आने वाले पर्यटक आकर्षित होते हैं, जैसे कि काठमांडू का बोधनाथ स्तूप, जो कई समुदायों के केंद्र में स्थित है। हर दिन, अनुभवी और उम्रदराज तिब्बती बौद्ध पुरुष और महिलाएं बोधनाथ स्तूप की परिक्रमा करते हैं। वे अपनी उंगलियों को माला पर फिराते हुए मंत्रों का जाप करते हैं। इस स्तूप पर श्रद्धालु पुण्य कमाने के लिए प्रार्थना चक्र भी घुमाते हैं। बोधनाथ स्तूप के प्रार्थना चक्रों पर 'ओम मणि पद्मे हूँ' (यहां सुनें) मंत्र अंकित है, जिसका उद्देश्य बौद्धों को ज्ञानोदय के करीब लाना है। ऐसा माना जाता है कि चक्र घुमाने से वही प्रभाव होता है जो मंत्र का मौखिक उच्चारण करने से होता है।

स्तूप का मूल वास्तुशिल्पीय स्वरूप उल्टे कटोरे जैसा है। गुंबद का चपटा शीर्ष भाग, जिसे हर्मिका कहा जाता है , देवताओं के निवास का प्रतीक है। स्तूप के केंद्र में, सोने या चांदी के बकसों में रखे अवशेष मौजूद हैं। संरचना के मध्य से एक केंद्रीय लकड़ी की छड़, या यस्ती, ऊपर की ओर उठती है और तीन प्रतीकात्मक छतरीनुमा डिस्क से सुशोभित है जो सम्मान, श्रद्धा और उदारता का प्रतिनिधित्व करती हैं। स्तूप का डिज़ाइन प्रतीकों से समृद्ध है और विशिष्ट संरचनात्मक तत्वों का पालन करता है, जिनमें शामिल हैं:

- मेधी : आधार पर स्थित वर्गाकार चबूतरा, जो अक्सर वेदिका (सीमा दीवार) से घिरा होता है।
- अंडा : अर्धगोलाकार गुंबद जो अवशेषों या प्रतीकों से युक्त ताबूत को घेरे रहता है।
- हर्मिका : गुंबद के ऊपर बनी एक वर्गाकार रेलिंग, जो एक पवित्र घेरे का प्रतीक है।
- यास्ती : केंद्रीय शिखर या मस्तूल, जो ब्रह्मांडीय अक्ष (एक्सिस मुंडी) का प्रतिनिधित्व करता है।
- छत्र : यस्ती के ऊपर छत्रों की एक श्रृंखला , जो सुरक्षा और बुद्ध की शिक्षाओं का प्रतीक है।
- तोरण : ये अलंकृत प्रवेश द्वार हैं जो चारों दिशाओं के अनुरूप बने होते हैं, और इनमें से प्रत्येक बुद्ध के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं से जुड़ा होता है।

- पूर्व दिशा : बुद्ध का जन्म
- दक्षिण : ज्ञानोदय
- पश्चिम : पहला उपदेश

- उत्तर : निर्वाण

मेधी के चारों ओर परिक्रमा पथ (प्रदक्षिणा पथ) भक्तों को श्रद्धा के प्रतीक के रूप में अनुष्ठानिक परिक्रमा करने की अनुमति देता है.

बौद्ध इतिहास में धार्मिक, सांस्कृतिक और स्थापत्य संबंधी बदलते रुझानों को दर्शाते हुए स्तूप वास्तुकला का विकास विभिन्न चरणों में हुआ। स्तूप वास्तुकला के विशिष्ट चरण निम्नलिखित हैं:

मौर्य काल

मौर्य काल (322 ईसा पूर्व-185 ईसा पूर्व) के दौरान , स्तूप वास्तुकला में महत्वपूर्ण विकास हुआ और स्तूप अधिक विस्तृत और अलंकृत हो गए। राजा अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार और बौद्ध शिक्षाओं तथा शाही सत्ता के प्रसार के लिए स्तूप वास्तुकला का उपयोग करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- प्रारंभिक मौर्यकालीन स्तूप: ये मिट्टी या ईंट के अपेक्षाकृत सरल अर्धगोलाकार टीले थे, जिनमें सबसे पुराना ज्ञात उदाहरण उत्तर प्रदेश में स्थित पिपरावा स्तूप है , जो ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का है।
- सांची स्तूप अशोकन काल के स्तूपों में सबसे प्रसिद्ध है।
- पत्थर के स्तूपों का विकास: इस काल के दौरान, बिल्डरों ने स्तूपों के निर्माण के लिए पत्थर का उपयोग करना शुरू कर दिया, जैसा कि सांची स्तूप में देखा जा सकता है, जिसका निर्माण कई चरणों में किया गया था, जिसमें सबसे पुराना स्तूप तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व का है।
- मौर्यकालीन स्तूपों को विस्तृत नक्काशी, नक्काशी और मूर्तियों से सजाया गया था, जिनमें बुद्ध के जीवन के दृश्यों और अन्य धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष रूपांकनों को दर्शाया गया था।
- क्षेत्रीय विविधताएं: सांची का स्तूप अपनी जटिल सजावट और पत्थर की संरचना के लिए जाना जाता है, जबकि भरहुत का स्तूप अपनी प्रारंभिक बौद्ध नक्काशी और उत्कीर्णन के लिए जाना जाता है।
- परिवर्तन: प्रारंभ में, बुद्ध को प्रतीकात्मक रूप से पदचिह्नों, स्तूपों, कमल सिंहासनों और चक्रों के माध्यम से दर्शाया गया था, लेकिन धीरे-धीरे कथा का विस्तार हुआ और इसमें बुद्ध के जीवन की घटनाओं को भी शामिल किया गया, जैसा कि स्तूपों की रेलिंग और तोरणों में देखा जा सकता है।

मौर्योत्तर काल

भारत में मौर्योत्तर काल (लगभग 200 ईसा पूर्व - 300 ईस्वी) में स्तूप वास्तुकला का विकास जारी रहा और आगे भी जारी रहा। इस दौरान विभिन्न राजवंश और राज्य उभरे, जिनमें से प्रत्येक की स्तूप निर्माण की अपनी विशिष्ट शैली और दृष्टिकोण था।

- सातवाहन काल : उन्होंने कई महत्वपूर्ण स्तूपों का निर्माण किया, जिनमें वर्तमान आंध्र प्रदेश में स्थित नागार्जुनकोंडा स्तूप और अमरावती स्तूप शामिल हैं।
- कृषाण साम्राज्य : उन्होंने वर्तमान अफगानिस्तान में कनिष्क स्तूप का निर्माण किया। यह स्तूप अपने विशाल आकार

और विस्तृत अलंकरण के लिए प्रसिद्ध है, जिसमें हजारों नक्काशीदार पत्थर के पैनल और मूर्तियां शामिल हैं।

गुप्त काल

इस अवधि के दौरान, स्तूप वास्तुकला का विकास जारी रहा और यह परिष्कार और उत्कृष्टता की नई ऊंचाइयों पर पहुंच गई।

- नई शैलियों का उदय: इस अवधि के दौरान, स्तूप वास्तुकला की नई शैलियाँ उभरी, जिनमें अधिक विस्तृत सजावट और बारीकियों पर अधिक ध्यान दिया गया।
- सारनाथ में स्थित धमेख स्तूप में बौद्ध धर्म से संबंधित विषयों और रूपांकनों को दर्शाने वाली जटिल नक्काशी की गई है।
- सजावटी तत्व: इन्हें अक्सर कमल की पंखुड़ियों, मालाओं और विभिन्न पौराणिक जीवों जैसे यक्ष, किन्नर और गंधर्वों जैसे अलंकृत तत्वों से सजाया जाता था।

इन सजावटी तत्वों को अक्सर एक सममित पैटर्न में व्यवस्थित किया जाता था, जिससे संतुलन और सामंजस्य की भावना पैदा होती थी।

- चौखंडी स्तूप (सारनाथ, उत्तर प्रदेश) : इसका निर्माण गुप्त साम्राज्य के दौरान हुआ था , और यह बुद्ध की पांच तपस्वियों (उनके प्रारंभिक शिष्यों) से मुलाकात की याद में बनाया गया है।
- इसमें आयताकार आकृति, ऊपर की ओर जाने वाली सीढ़ियाँ और बुद्ध की मूर्तियाँ हैं। मुगल साम्राज्य के दौरान 1588 ईस्वी में इसमें एक अष्टकोणीय भाग जोड़ा गया था।
- निर्माण सामग्री: ईंटें और पत्थर, जिनकी बाहरी सतह पर प्लास्टर या स्टुको की परत चढ़ी हो.

निष्कर्ष

बौद्ध धर्म में स्तूपों का आध्यात्मिक और स्थापत्य महत्व है। बुद्ध की मृत्यु के बाद, उनकी अवशेष संरचनाएं महज समाधि स्थल से कही अधिक महत्व रखती हैं, जो उच्चतर पारलौकिक सत्यों की प्राप्ति का प्रतीक हैं।स्तूपों के तोरणों (द्वारों) में अक्सर जातक कथाओं को दर्शाया जाता है , जो कर्म, संसार और धर्म पर शिक्षा प्रदान करती हैं। अंडा (अर्धगोलाकार गुंबद) अंतर्निहित रचनात्मक शक्ति और स्वर्ग के अनंत गुंबद का प्रतिनिधित्व करता है, जो जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म के चक्र का प्रतीक है। अंडा के ऊपर स्थित हार्मिका निर्वाण का प्रतीक है, जो जीवन और मृत्यु से परे की परम अवस्था है।छत्र ज्ञान और राजसी गरिमा का प्रतीक है, जबकि सांची में तीन छत्र परतें तीन रत्नों का प्रतिनिधित्व करती हैं: बुद्ध , धर्म और संघ।वेदिकाएँ पवित्र स्थान को सीमांकित करती हैं , उसे सांसारिक दुनिया से अलग करती हैं और उस स्थान की आध्यात्मिक पवित्रता को बढ़ाती हैं। इस प्रकार स्तूप बौद्ध दर्शन और भक्ति के महत्वपूर्ण प्रतीक हैं.

संदर्भ

1. encyclopedia.com। जेम्स स्टीवंस कर्ल द्वारा लिखित "ए डिक्शनरी ऑफ आर्किटेक्चर एंड लैंडस्केप आर्किटेक्चर" , 2000, मूल रूप से ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 2000 में प्रकाशित।

2. हार्ले, जेम्स कॉफिन (1994)। भारतीय उपमहाद्वीप की कला और वास्तुकला (द्वितीय संस्करण)। न्यू हेवन, लंदन: येल यूनिवर्सिटी प्रेस। पृष्ठ 201। ISBN 978-0-300-06217-5.
3. मिशेल, जॉर्ज (1990)। भारत के स्मारकों के लिए पेंगुइन गाइड । लंदन: पेंगुइन बुक। पृष्ठ 228-229 । ISBN 978-0-14-008144-2.
4. "बौद्ध कला और वास्तुकला: स्तूप/चोर्टेन का प्रतीकवाद" । 14 अगस्त 2006। 7 जनवरी 2013 को पुनः प्राप्त किया गया ।
5. "बौद्ध स्तूप: उत्पत्ति और विकास" । 13 जनवरी 2005। मूल से 9 फरवरी 2005 को संग्रहित। 7 जनवरी 2013 को पुनः प्राप्त ।
6. स्किलिंग (2016) , पृ. 25.
7. स्किलिंग (2016) , पृ. 23–24.
8. "यह संभवतः भूमध्य सागर से गंगा घाटी तक फैली एक साझा सांस्कृतिक विरासत से जुड़ा है, जो लगभग आठवी शताब्दी ईसा पूर्व के एरिट्रिया और लिडिया में पाए गए मकबरों, गोलाकार नीव पर बने शंकु के आकार के मिट्टी के टीलों में प्रकट होती है ।" राव, पी.आर. रामचंद्र (2002)। अमरावती । युवा संवर्धन, पर्यटन एवं संस्कृति विभाग, आंध्र प्रदेश सरकार। पृष्ठ 33।
9. अमृत के अर्धगोलाकार फोनीशियन मकबरों पर: कुमारस्वामी, आनंद के. (1972). भारतीय और इंडोनेशियाई कला का इतिहास . पृ. 12 .
10. गिस्बर्ट कॉम्बाज़ की पुस्तक पर टिप्पणी करते हुए , उन्होंने अपने अध्ययन 'L'évolution du stupa en Asie' में यह भी कहा है कि "भारत से बहुत पहले, शास्त्रीय पूर्वी सभ्यता ने अपने मकबरों के निर्माण के लिए टीलों के आकार से प्रेरणा ली थी: फ्रिगिया, लिडिया, फ़िनिशिया। " (बेनिस्टी, मिरेइल; के. थानिकैमोनी (2003) द्वारा लिखित 'भारत में बौद्ध कला की शैलीविज्ञान' , इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, पृष्ठ 12, ISBN) 9788173052415.
11. मेनन (2016) ।
12. शोपेन (2004) , पीपी 361-374।
13. बिष्ट (2014) ।
14. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (2008), पैगोडा ।
15. सोएकमोनो, आर. (1976). चांदी बोरोबुदुर: मानवता का एक स्मारक । पेरिस: यूनेस्को प्रेस। पृष्ठ 39. ISBN 92-3-101292-418 मार्च 2021 को प्राप्त किया गया ।
16. ले (2010) , पृ. 140–174.
17. फोगेलिन, लार्स (2015). भारतीय बौद्ध धर्म का पुरातात्विक इतिहास . ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृष्ठ 85. ISBN 9780199948239.
18. लाहिड़ी, नयनजोत (2015)। प्राचीन भारत में अशोक . हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। पीपी. 246-247 . आईएसबीएन 9780674057777.

19. चंद्र (2008) ।

20. ले (2010) , पृ. 143.